

महर्षि वात्स्यायन के शिक्षा सम्बन्धी विचार तथा शिक्षा के भारतीयकरण में उनका प्रयोग

सारांश

प्रस्तुत शोधपत्र का उद्देश्य वर्तमान शिक्षा के सन्दर्भ में पुरातन भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा के भारतीयकरण हेतु बताये गये उपाय तथा विशेष रूप से महर्षि वात्स्यायन के विचारों के अनुरूप शिक्षा के भारतीयकरण की सम्भावनाओं की खोज करने का प्रयत्न करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अध्ययनकर्ता ने महर्षि वात्स्यायन एवं अन्य प्राचीन मनीषियों के विचारों का गहन विश्लेषण कर भारतीय संदर्भ में उनको मूल्यांकित किया है। शोध पत्र सारांशित करता है कि वर्तमान की भारतीय शिक्षा-प्रणाली प्रधानतः पश्चिमीकरण पर आधारित है। अतः इसके भारतीयकरण की आवश्यकता है, जिससे कि भारतीय सभ्यता और संस्कृति के अनुरूप व्यक्ति विकसित किये जा सकें।

मुख्य शब्द: भारतीयकरण – भारतीय आदर्शों व मूल्यों के अनुरूप होने की प्रक्रिया, शिक्षा के उद्देश्य – पश्चिमी तथा भारतीय दोनों, पाठ्यक्रम व शिक्षण विधि – भारतीय और पश्चिमी संप्रत्यय, महिला शिक्षा तथा गुरु-शिष्य सम्बन्ध।



अनिल कुमार

असिस्टेंट टीचर,
बेसिक शिक्षा विभाग,
जे०एच०एस० सिहानी,
फरीदपुर, अलीगढ़

प्रस्तावना

शिक्षा के भारतीयकरण की चर्चा करने से पहले दो प्रश्नों पर विचार किया जाना आवश्यक है

1. भारत क्या है, और
2. क्या वैदिक भारत और वर्तमान भारत समरूप हैं या दोनों के स्वरूप में स्पष्ट भिन्नता है जिसके कारण परम्परागत भारतीय शिक्षाप्रणाली को ज्यों का त्यों स्वीकार नहीं किया जा सकता? कहने की आवश्यकता नहीं कि वैदिक भारत विशुद्ध "आर्य एवं एकात्मक भारत" था, जबकि वर्तमान भारत "विविधात्मक भारत" है जहाँ आर्य और अनार्य, आक्रान्ता और आक्रान्त, धर्म और पन्थ, आस्तिक और नास्तिक, धर्मसापेक्ष और धर्मनिरपेक्ष साथसाथ रहते हैं। शिक्षा का भारतीयकरण करते समय भारत की इस विविधात्मक जनसंख्या और उसके विभिन्न तत्त्वों की आवश्यकताओं, आकांक्षाओं और जीवनमूल्यों का ध्यान रखना होगा और एक सर्वमान्य जीवनदर्शन का विकास करना होगा। यही नहीं, एक ऐसे "मिश्रित समाज" की शिक्षाप्रणाली कर्मकाण्डों से मुक्त और सर्वमान्य जीवनमूल्यों पर आधारित होगी। इसके अतिरिक्त, ऐसे मिश्रित भारतीय समाज के धर्मप्रधान एवं धर्माग्रही होने के कारण वह शिक्षा प्रणाली "धर्मसापेक्ष" भी होगी। मिश्रित भारतीय समाज की आत्मा धर्मनिरपेक्ष जीवनदर्शन और शिक्षाप्रणाली को कदापि स्वीकार नहीं करेगी। अतः हमें सर्वमान्य धार्मिक मूल्यों का भी वरण करना होगा। इस दृष्टि से, भारत के संविधान की प्रस्तावना में उल्लिखित मूल्य पर्याप्त नहीं हैं और उनके परिवर्धन की बड़ी आवश्यकता है। यह परिवर्धन विभिन्न धर्मों और पन्थों के धर्मग्रन्थों में उल्लिखित मूल्यों में से निकाले जा सकते हैं। हमें यह स्पष्ट रूप से समझलेना चाहिए कि शिक्षा के द्वारा व्यक्ति का सर्वांगीण वैयक्तिक और सामाजिक विकास करने के लिये वैयक्तिक और सामाजिक दोनों प्रकार के मूल्यों की आवश्यकता होती है और वे दो पृथक्-पृथक् स्रोतों से प्राप्त होते हैं

I. वैयक्तिक मूल्य धर्मशास्त्र से प्राप्त होते हैं, और

II. सामासिक मूल्य संविधान और समाजशास्त्र से प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार धर्मशास्त्र और संविधान दोनों जीवनमूल्यों के सर्वमान्य स्रोत होते हैं। किन्तु मूल्यस्रोतों का यह विभाजन एकान्तिक और अपवर्जक नहीं है क्योंकि वैयक्तिक और सामासिक जीवनमूल्य दोनों स्रोतों में हो सकते हैं अथवा कुछ जीवनमूल्य वैयक्तिक और सामासिक दोनों प्रकार के हो सकते हैं।

अनुसन्धाता का सुझाव है कि राष्ट्रीय शिक्षाप्रणाली के पुनर्निर्माण के लिये अपेक्षित युगानुरूप जीवनमूल्यों का चयन व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास, उनकी समस्याओं के समाधान और उनकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति को ध्यान में रखकर किया जाये।

उद्देश्य

महर्षि वात्स्यायन के शैक्षिक विचारों का अध्ययन एवं भारत की वर्तमान परिस्थितियों में उनकी प्रासंगिकता।

शैक्षिक पक्ष

शिक्षा के उद्देश्य

1. इस विषय में, वैदिकमत सर्वथा निर्दोष, उदार और व्यापक प्रतीत होता है। वैदिक दृष्टि से, शिक्षा का अन्तिम, आधारभूत उद्देश्य वेद के "मनुर्भव" आदर्श में सन्निहित है। इस आदर्श का विवेचन करके हम शिक्षा के अन्तिम, आधारभूत उद्देश्य को निम्न प्रकार शब्दबद्ध कर सकते हैं
"शिक्षा का अन्तिम, आधारभूत उद्देश्य "मानवनिर्माण" अर्थात् मानव को आदर्श पुरुष और उसके माध्यम से समाज को आदर्श समाज बनाना है। आदर्श मानव और आदर्श समाज के उद्देश्यों की सिद्धि मानव और समाज का सर्वांगीण, सन्तुलित विकास करके ही की जा सकती है।"
2. व्यक्ति के सर्वांगीण, सन्तुलित विकास का तात्पर्य है, उसकी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक और सामासिक क्षमताओं एवं दक्षताओं का विकास करना और समाज के सर्वांगीण, सन्तुलित विकास का तात्पर्य है, व्यक्ति की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं शैक्षिक क्षमताओं एवं सम्बन्धों का विकास
3. व्यक्ति के सर्वांगीण, सन्तुलित विकास के अन्तर्गत उसकी समस्त शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक, आध्यात्मिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक और शैक्षिक क्षमताओं और दक्षताओं का समावेश हो जाता है। शिक्षा के यही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य हैं जिन्हें शिक्षाविद् भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं, यथा सामाजिक दक्षता, आर्थिक दक्षता, राजनीतिक दक्षता आदि। अब प्रश्न उठता है कि शिक्षा संस्थानों में इन क्षमताओं और दक्षताओं के लिये क्या किया जा सकता है? इस प्रश्न का संक्षिप्ततम उत्तर यही है कि शिक्षा संस्थाओं को चाहिए कि वे पाठ्यक्रियाओं के द्वारा छात्रों को इन क्षमताओं एवं दक्षताओं के महत्त्व का सैद्धान्तिक ज्ञान कराये और पाठ्येत्तर क्रियाओं के द्वारा उनको इन क्षमताओं एवं दक्षताओं के विकास के लिये व्यावहारिक, प्रायोगिक एवं क्रियात्मक प्रशिक्षण प्रदान करें।

पाठ्यक्रम

1. सर्वविदित है कि राष्ट्रीय शिक्षाप्रणाली के दो ही आधार या केन्द्रबिन्दु होते हैं: व्यक्ति और समाज। इनमें भी समाज की अपेक्षा व्यक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण होता है क्योंकि वही समाज के निर्माण और विकास

का वास्तविक माध्यम होता है। अतः शिक्षा के पाठ्यक्रम का निर्धारण व्यक्ति और समाज दोनों के अभ्युदय एवं विकास की दृष्टि से किया जाना चाहिए।

2. अनुसन्धाता का सुझाव है कि भारतीय शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम तीन भागों में विभक्त होना चाहिए :
 - i. दार्शनिक-सांस्कृतिक पाठ्यक्रम,
 - ii. वैज्ञानिक पाठ्यक्रम, और
 - iii. तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम।
 दार्शनिक-सांस्कृतिक पाठ्यक्रम के द्वारा छात्रों में जीवन के प्रति एक सम्यक् दार्शनिक दृष्टि का, वैज्ञानिक पाठ्यक्रम के द्वारा वैज्ञानिक दृष्टिकोण का और तकनीकी एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम के द्वारा श्रम, कलाकौशल, हस्तकार्य, व्यवसाय तथा आर्थिक आत्मनिर्भरता की भावना का विकास किया जाना चाहिए। संस्कारविहीन, अन्धविश्वासक्रान्त, श्रमविरोधी स्वतन्त्र भारत के अभ्युदय का बस यही एकमात्र राजपथ है।
3. पाठ्यक्रम में सिद्धान्तज्ञान की अपेक्षा प्रायोगिक क्रियाकलापों को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाना चाहिए। उदाहरण के लिये, शिक्षक-प्रशिक्षण के पाठ्यक्रम में सैद्धान्तिक तथ्यों की अपेक्षा अभ्यास शिक्षण, कक्षा शिक्षण और हस्तकौशल पर अधिक बल दिया जाना चाहिए। सम्प्रति भारतीय प्रशिक्षण-संस्थाओं में प्रायोगिक प्रशिक्षण की घोर उपेक्षा की जाती है जो उचित नहीं।

शिक्षण विधि

1. भारतीय परिस्थिति के लिये उपयुक्त शिक्षणविधि में श्रवण, मनन, निधिध्यासन तत्त्वों का समावेश अवश्य होना चाहिए। भारतीय शिक्षाविदों को इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार करना चाहिए कि इन तत्त्वों को प्रचलित व्याख्यान या प्रवचन विधि (Lecture Method) में प्रभावी प्रयोग किस प्रकार किया जाय? वैसे ये सब तत्त्व वैदिककालीन चतुष्पद शिक्षणविधि (जिज्ञासा, श्रवण, मनन, निधिध्यासन) में पहले से ही विद्यमान हैं। गीता में मनन को परिप्रश्न कहा गया है। उपनिषदों में चतुष्पद शिक्षणविधि का प्रभावी प्रयोग हुआ है। भारतीय शिक्षाविदों को पाश्चात्य शिक्षणविधियों का अन्धानुकरण न करके वैदिक शिक्षणविधि की उपादेयता पर पुनर्विचार करना चाहिए।
2. पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों और शिक्षाविदों की यह मान्यता पूर्णतया निराधार एवं भ्रामक है कि वैदिककाल के ऋषि-मुनि मनोविज्ञान से अपरिचित थे क्योंकि उस समय एक स्वतन्त्र विषय के रूप में मनोविज्ञान का विकास नहीं हुआ था। इसके विपरीत सत्य तो यह है कि अध्यात्मशास्त्र और मनोविज्ञान का जितना विकास प्राचीन भारत में हुआ, उतना अन्यत्र आज तक नहीं हो पाया।
3. अनुसन्धाता भारतीय और पाश्चात्य शिक्षणविधियों एवं शिक्षण सिद्धान्तों के समन्वय पर विशेष बल देना

आवश्यक समझता है। भारतीय शिक्षणकला की उपेक्षा और पाश्चात्य शिक्षणकला के अन्धानुकरण से भारतीय शिक्षा का उद्धार कदापि न होगा। भारत को भारतीय परिस्थिति के अनुरूप शिक्षणविधि का विकास करना ही होगा। आजकल भारतीय शिक्षक-प्रशिक्षण-संस्थाओं में शैक्षिक प्रौद्योगिकी (Educational Technology) और पाश्चात्य शिक्षणविधियों (हरबार्ट की पंचपदप्रणाली, पैस्टालॉजी के शिक्षण सिद्धान्त, किण्डरगार्टन एवं मॉण्टेसरी शिक्षण पद्धतियाँ, डाल्टनप्लान, प्रोजेक्टमैथड, शिक्षण प्रतिमान (Teaching Models) आदि के नाम से जिन शिक्षणविधियों का ज्ञान करायाजा रहा है, वे भारतीय परिस्थिति में कितनी व्यावहारिक हैं? इन शिक्षण विधियों की उपयोगिता एवं अनुकूलता का अनुसन्धान होना चाहिए।

- हमें प्रत्येक विषय की प्रकृति के अनुसार शिक्षणविधि का चयन करना होगा और आवश्यकतानुसार नयी विधियों का आविष्कार करना होगा। समन्वय और अनुसन्धान इस लक्ष्य की सिद्धि के राजपथ हैं। उदाहरण के लिये, मानव या चरित्रनिर्माण की दृष्टि से खेल और अनुशासन में समन्वय की बड़ी आवश्यकता है।

गुरु शिष्य सम्बन्ध

- भारतीय संस्कृति ने गुरु और शिष्य के मध्य जो भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है, उसका विच्छेद किया जाना असंभव है। तथापि, यह सत्य है कि अब भारतीय समाज में दिव्यगुरु का स्थान पहले-जैसा नहीं रहा है और गुरु शिष्यों की आलोचना का वाद विषय बन गये हैं। किन्तु समाज को यह सोचना चाहिए कि वह उपेक्षित अपमानित एवं असन्तुष्ट गुरु से अपनी सन्तानों का निर्माण किस प्रकार करा सकेगा? समाज को चाहिए कि वह आलोचना के बजाय मानवनिर्माता गुरुजनों की समस्याओं को समझे और उनका समाधान करे। समाज के बच्चों की शिक्षा का दायित्व वहन करनेवाले गुरु को समाज का सम्मान और सहयोग मिलना ही चाहिए।
- अनुसन्धाता का सुझाव है कि या तो ऐसी शिक्षक-प्रशिक्षण-संस्थाओं को आदर्श शिक्षक-प्रशिक्षण के लिये सक्षम एवं कर्तव्यपरायण बनायाजाये अथवा उन्हें समाप्त कर दिया जाये। विद्वतापूर्ण सैद्धान्तिक संस्तुतियों द्वारा इन भ्रष्ट शिक्षक-प्रशिक्षण-संस्थानों को सन्मार्ग पर लाया जाना सर्वथा असंभव है।

महिला शिक्षा

- शिक्षा के क्षेत्र में समानता सिद्धान्त के साथ-साथ व्यक्तिगत भेदों के सिद्धान्त को भी अपेक्षित महत्त्व प्रदान कियाजाना चाहिए और इस प्रश्न पर गंभीरतापूर्वक विचार विमर्श होना चाहिए कि क्या स्त्री का स्त्री के रूप में और पुरुष का पुरुष के रूप में नैसर्गिक विभेदीकरण अकारण एवं निष्प्रयोजन है? अनुसन्धाता का मत है कि यह विभेदीकरण सकारण और सप्रयोजन है। अतः वह विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) की इस संस्तुति से सहमत है कि स्त्रीपुरुष की क्षमतात्मक समानता के बावजूद स्त्री की

शिक्षा स्त्री के रूप में और पुरुष की शिक्षा पुरुष के रूप में होनी चाहिए।

- भारतीय संस्कृति द्वारा प्रतिपादित आदर्श मानव के स्वरूप और जीवनमूल्यों की दृष्टि से भारतीय परिस्थिति में सहशिक्षा की प्रासंगिकता पर गंभीरतापूर्वक पुनर्विचार किया जाना चाहिए। अनुसन्धाता किसी कारणवश इस संस्तुति की विशद व्याख्या करना उचित नहीं समझता।
- अनुसन्धाता इस संस्तुति पर विशेष बल देना आवश्यक समझता है कि भारत की वर्तमान परिस्थिति में सब महिलाओं के लिये शिक्षा और नियोजन के क्षेत्रों में आरक्षण की समस्त सुविधाएँ सुलभ होनी चाहिए और उन्हें जातीय एवं वर्गीय आरक्षण की परिधि से बाहर रखाजाना चाहिए। अन्य शब्दों में, महिलाओं को आरक्षण की सुविधाएँ महिलाओं के रूप में मिलनी चाहिए।
- महिला वर्ग में अधिकतम शिक्षाप्रसार की दृष्टि से अनिवार्य शिक्षा अधिनियम को कड़ाई से लागू किया जाना चाहिए और उनकी शिक्षा को निर्बाध बनाने के लिये उन्हें अधिकतम शैक्षिक सुविधाएँ सुलभ करायीजानी चाहिए, किन्तु महिला-शिक्षा का आधार मुख्यतया वैदिक पारिवारिक आदर्श ही होने चाहिए।

अन्तिम निर्णायक संस्तुति

पूर्वगत पंक्तियों में प्रस्तुत संस्तुतियाँ शिक्षाप्रणाली के भारतीयकरण की दृष्टि से की गयी हैं। अनुसन्धाता का सम्पूर्ण अनुसन्धान इस मूलभूत मान्यता पर आधारित है कि शिक्षाप्रणाली के भारतीयकरण का तात्पर्य उसके समस्त पक्षों को सर्वमान्य भारतीय जीवनमूल्यों पर आधारित करना है। उपर्युक्त विवेचन में परीक्षा प्रणाली, शिक्षा का व्यवसायीकरण आदि पक्षों के सम्बन्ध में संस्तुतियाँ नहीं की गयी हैं क्योंकि अनुसन्धाता की मान्यता है कि इन पक्षों के सम्बन्ध में राष्ट्रीय शिक्षा आयोगों द्वारा की गयी संस्तुतियाँ पर्याप्त हैं और उन्हें यथाशीघ्र कार्यान्वित किया जाना चाहिए। यहाँ इन पक्षों के भारतीयकरण की दृष्टि से इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि शिक्षाप्रणाली के अन्य पक्षों की तरह परीक्षाप्रणाली आदि पक्ष भी सर्वमान्य जीवनमूल्यों की उपेक्षा न करें। सर्वमान्य जीवनमूल्य शिक्षा और उसके समस्त पक्षों के लिये मुख्य आधार मानेजायें और शिक्षा का प्रत्येक पक्ष उन मूल्यों पर आधारित हो। मूल्यशिक्षा मात्र सच्ची शिक्षा ही नहीं, अपितु शिक्षा के भारतीयकरण का एकमात्र सर्वोत्तम राजपथ भी है। मूल्यहीन मानव मानव नहीं, मूल्यहीन समाज समाज नहीं, मूल्यहीन राष्ट्र राष्ट्र नहीं, मूल्यहीन धर्म धर्म नहीं, मूल्यहीन संस्कृति संस्कृति नहीं और मूल्यहीन शिक्षा शिक्षा नहीं। मूल्य नहीं तो कुछ नहीं। वस्तुतः मूल्यसंकट ही स्वतन्त्र भारत का वास्तविक राष्ट्रीय संकट है।

निष्कर्ष

भारतीय शिक्षा प्रणाली का भारतीयकरण किया जाना भारतीय शिक्षा की सर्वोपरि आवश्यकता है। अनुसन्धाता का सुझाव है कि राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के पुनर्निर्माण के लिए अपेक्षित युगानुरूप जीवनमूल्यों का चयन व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के सर्वांगीण विकास, उनकी समस्याओं के समाधान और उनकी आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं की पूर्ति को ध्यान में रखकर किया जाये।

शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य व्यक्ति का सर्वांगीण विकास के साथ मानव-निर्माण अर्थात् मानव को आदर्श पुरुष और उसके माध्यम से समाज को आदर्श समाज बनाना भी है।

भारतीय शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर पाठ्यक्रम तीन भागों में विभक्त होना चाहिये – (1) दार्शनिक पक्ष, (2) वैज्ञानिक पक्ष, (3) तकनीकी एवं व्यावसायिक पक्ष। साथ ही शिक्षा संस्थाओं को चाहिए कि वे छात्रों को सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ व्यावहारिक-प्रायोगिक एवं क्रियात्मक प्रशिक्षण भी प्रदान करें। भारतीय शिक्षाविदों को चाहिये कि वे पाश्चात्य सिद्धान्तों एवं शिक्षणविधियों का अन्धानुकरण न करें वरन् भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप सिद्धान्तों एवं शिक्षण विधियों का विकास कर राष्ट्र-निर्माण में अपना योगदान दें।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पण्डित माधवाचार्य : कामसूत्रम् (भाग-2), खेमराज श्री कृष्णदास प्रकाशन, बम्बई-4, 1999

2. डॉ० रामचन्द्र वर्माशास्त्री : कामसूत्र, मनोज पब्लिकेशन, चाँदनी चौक, दिल्ली-6, 2008
3. जीवन के लिए शिक्षा, शिक्षकों तथा विद्यार्थियों हेतु पारिवारिक स्वास्थ्य एवं जीवन-कलाओं की शिक्षा का गाइड, उ०प्र० शासन
4. राज्य माध्यमिक शिक्षकों की कार्य-पुस्तिका : विद्यालय एड्स शिक्षा कार्यक्रम, यूनिसेफ, यूनिसेफ भवन 73, लोधी एस्टेट, नई दिल्ली
5. शिक्षा आयोग की रिपोर्ट, शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
6. विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49), शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
7. Research in Education, Best J.W., New Delhi
8. S.V.C. Arya : The Fourth Indian Year Book of Education, New Delhi, Jan. 1972.
9. Encyclopedia X. Xarris, Chistrew: Encyclopedia of Educational Research, New York, The Macmillan Company, Third Edition, 1960.
10. Educational Ideas and Institutions in Ancient India : Janki Prakashan, Patna, 1979.